ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

नैतिक जीवन के मनोवैज्ञानिक आधार : जैनदर्शन के विशेष परिप्रेक्ष में

डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज
सहायक आचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं।

भूमिका :

नैतिक दर्शन का प्रमुख उद्देश्य जीवन के साध्य का निर्धारण एवं उस सन्दर्भ में हमारे आचरण का मूल्यांकन करना है। नैतिक दर्शन और मनोविज्ञान दोनों के अध्ययन की विषय-वस्तु प्राणियों का व्यवहार है। मनोविज्ञान का कार्य व्यवहार की तथ्यात्मक प्रकृति का अध्ययन है तो नैतिक दर्शन का कार्य व्यवहार के आदर्श का निर्धारण एवं व्यवहार का मूल्यांकन है किन्तु आदर्श का निर्धारण तथ्यों की अवहेलना करके नहीं हो सकता है। हमें क्या होना चाहिए, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि हम क्या हैं? हमारी क्षमताएं क्या है? जैनदर्शन ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को अधिक गम्भीरता से समझा है और अपने नैतिक दर्शन को ठोस मनोवैज्ञानिक नींव पर खड़ा किया है।

जैनदर्शन में हमें प्राणीय प्रकृति का गहन विश्लेषण प्राप्त होता है। जब महावीर से यह पूछा गया था कि आत्मा क्या है? और आत्मा का साध्य या आदर्श क्या है? तब महावीर ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया था, वह आज भी मनोवैाानिक दृष्टि से समीचीन प्रतीत होता है। महावीर ने कहा था-आत्मा समत्त्वरूप है और समत्त्व ही आत्मा का साध्य है।[प] वस्तुतः जहां-जहां भी जीवन है, चेतना है, वहां-वहां समत्त्व की स्थापना के अनवरत प्रयास चल रहे हैं। परिवेशजन्य विषमताओं को दूरकर समत्त्व के लिए प्रयासशील बने रहना यह जीवन या चेतना का मूल स्वभाव है। शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर समत्त्व का संस्थापन ही जीवन का लक्षण है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में जीवन गतिशील और सन्तुलित है।[पप] स्पेन्सर मानता है कि परिवेश में निहित तथ्य हमारे सन्तुलन को बनाये रखने का प्रयास करते हैं। यह सन्तुलन बनाने का प्रयास ही जीवन की प्रक्रिया है।[पपप] विकासवादियों ने इसे ही अस्तिव के लिए संघर्ष कहा है, किन्तु मेरी अपनी दृष्टि से इसे अस्तिव के लिए संघर्ष कहने की अपेक्षा समत्त्व के संस्थापन का प्रयास कहना ही अधिक उचित है। समत्त्व का संस्थापन एवं समायोजन की प्रक्रिया ही जीवन का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। समायोजन और संतुलन के प्रयास की उपस्थिति ही जीवन है और उसका अभाव मृत्यु है। मृत्यु अन्य कुछ नहीं, मात्र शारीरिक स्तर पर सन्तुलन बनाने की इस प्रक्रिया का असफल होकर टूट जाना है।[पअ] अध्यात्मशास्त्र के अनुसार जीवन न तो जन्म है और न मृत्यु। एक शरीर में यह प्रारम्भ बिन्दु है तो दूसरे में उसके अभाव की उद्घोषणा करने वाला तथ्य। जीवन दोनों से ऊपर है, जन्म और मृत्यु तो एक शरीर में उसके आगमन और चले जाने की सूचनामात्र है, वह उनसे अप्रभावित है। सच्चा जीवन तो जागृति है, अप्रमत्त चेतना है। जैनदर्शन इसे ही जीव या आत्मा का स्वरूप कहता है।

चेतना के तीन पक्ष और जैनदर्शन :

मनोवैज्ञानिकों ने चेतना का विश्लेषण कर, उसके तीन पक्ष माने हैं-ज्ञान, अनुभूति और संकल्प। चेतना को अपने इन तीन पक्षों से भिन्न कहीं देखा नहीं जा सकता है। चेतना इन तीन प्रक्रियाओं के रूप में ही अभिव्यक्त होती हैं। जैन विचारकों की दृष्टि में चेतना के यह तीनों पक्ष नैतिक आदर्श एवं नैतिक-साधना मार्ग से निकट रूप

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

से सम्बन्धित है। जैन आचार-दर्शन में चेतना के इन तीन पक्षों के आधार पर ही नैतिक आदर्श का निर्धारण किया गया है। जैनदर्शन का आदर्श मोक्ष है और मोक्ष अनन्त चतुष्ट्य अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सौख्य और अनन्त शक्ति की उपलब्धि है। वस्तुतः मोक्ष चेतना के इन तीनों पक्षों की पूर्णता का द्योतक हैं। जीवन के ज्ञानात्मक पक्ष की पूर्णता-अनन्त ज्ञान एवं दर्शन में, जीवन के भावात्मक या अनुभूत्यात्मक पक्ष की पूर्णता-अनन्त सौख्य में और संकल्पनात्मक पक्ष की पूर्णता अनन्त शक्ति में मानी गयी है। जैन नैतिक साधना पथ भी चेतना के इन्हीं तीन तत्त्वों-ज्ञान, भाव और संकल्प के साथ सम्यक् विशेषण का प्रयोग करके निर्मित किया गया है। ज्ञान से सम्यक् ज्ञान, भाव से सम्यक् दर्शन और संकल्प से सम्यक् चारित्र का निर्माण हुआ है। इस प्रकार जैनदर्शन में साध्य, साधक और साधना-पथ इन तीनों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार हुआ है।

नैतिक दर्शन का उद्देश्य : समता की स्थापना :

हमारे नैतिक व्यवहार का लक्ष्य क्या है? यह प्रश्न मनोविज्ञान और नैतिक दर्शन, दोनों की ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जैनदर्शन में इसे मोक्ष कहकर अभिव्यक्ति किया गया है, किन्तु यदि हम जैनदर्शन के अनुसार मोक्ष का विश्लेषण करें तो मोक्ष वीतरागता की अवस्था है और वीतरागता चेतना के पूर्ण समत्त्व की अवस्था है। इस प्रकार जैनदर्शन में समत्त्व को ही नैतिक जीवन का आदर्श माना गया है। यह बात मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सही उतरती है। संघर्ष नहीं, अपितु समत्त्व ही मानवीय जीवन का आदर्श हो सकता है, क्योंकि यह ही हमारा स्वभाव है और जो स्वभाव है वही आदर्श है। स्वभाव से भिन्न आदर्श की कल्पना अयथार्थ है। स्पेन्सर, डार्विन, मार्क्स प्रभृति कुछ विचारक संघर्ष को ही जीवन का स्वभाव मानते हैं, लेकिन यह एक मिथ्या धारणा है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार वस्तु का स्वभाव वह होता है, जिसका निराकरण नहीं किया जाता। जैनदर्शन के अनुसार नित्य और निरपवाद वस्तुधर्म ही स्वभाव है। यदि हम इस कसौटी पर कसें तो संघर्ष जीवन का स्वभाव सिद्ध नहीं होता है। द्वन्दात्मक भौतिकवाद के अनुसार मनुष्य का स्वभाव संघर्षयुक्त है, मानवीय इतिहास वर्ग-संघर्ष की कहानी है, संघर्ष ही जीवन का नियम है किन्तु यह एक मिथ्या धारणा है। यदि संघर्ष ही जीवन का नियम है तो फिर द्वन्दात्मक भौतिकवाद संघर्ष का निराकरण क्यों करना चाहता है? संघर्ष मिटाने के लिए होता है और जो मिटाने की या निराकरण करने की वस्तु है, उसे स्वभाव कैसे कहा जा सकता है? संघर्ष यदि मानव-इतिहास का एक तथ्य है तो वह उसके दोषों का, उसके विभाव का इतिहास है, उसके स्वभाव का नहीं। मानव-स्वभाव संघर्षयुक्त नहीं, संघर्ष का निराकरण या समत्त्व की अवस्था है। मानव इतिहास संघर्ष की कहानी नहीं संघर्षों के निराकरण की कहानी है।

संघर्ष अथवा समत्त्व से जीवन में विचलन पाए जाते हैं, लेकिन वे जीवन का स्वभाव नहीं है, क्योंकि जीवन की प्रक्रिया उनके समाप्त करने की दिशा में ही प्रयासशील है। समत्त्व की उपलब्धि ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जीवन का साध्य है। समत्त्व शुभ और विषमता अशुभ है। कामना, आसक्ति, राग-द्वेष, वितर्क आदि सभी जीवन की विषमता, असन्तुलन एवं तनाव की अवस्था को अभिव्यक्त करते हैं। अतः जैनदर्शन में इन्हें अशुभ माना गया है। इसके विपरीत वासना-शून्य, वितर्क-शून्य, निष्काम, अनासक्त, वीतराग अवस्था ही शुभ (नैतिकता) है और वही जीवन का आदर्श है, क्योंकि वह समत्त्व की स्थिति है। जैनदर्शन के अनुसार समत्त्व एक आध्यात्मिक सन्तुलन है। राग और द्वेष की वृत्तियां हमारी चेतना के समत्त्व को भंग करती हैं। अतः उनसे ऊपर उठकर वीतरागता की

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

अवस्था को प्राप्त कर लेना ही सच्चे समत्त्व की अवस्था है। वस्तुतः समत्त्व की उपलब्धि जैनदर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान, दोनों की दृष्टि से मानव-जीवन का साध्य मानी जा सकती है।

नैतिक जीवन का साध्य : मोक्ष :

जैनदर्शन के अनुसार मोक्ष आत्मपूर्णता की अवस्था है। पूर्ण समत्त्व के लिए आत्मपूर्णता भी आवश्यक है, क्योंकि अपूर्णता या अभाव भी एक मानसिक तनाव है। हमारे व्यावहारिक जीवन में हमारे सम्पूर्ण प्रयास, हमारी चेतना के ज्ञानात्मक, भावात्मक और संकल्पात्मक शक्तियों के विकास के निमित्त होते हैं। हमारी चेतना सदैव ही इस दिशा में प्रयत्नशील होती है कि वह अपने इन तीन पक्षों की देश और कालगत सीमाओं का अतिक्रमण कर सके। व्यक्ति अपनी ज्ञानात्मक, भावात्मक और संकल्पात्मक क्षमताओं की पूर्णता चाहता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य अपने अभावों और अपूर्णता से छुटकारा पाना चाहता है। वस्तुतः मानवमन की इस स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति ही जैनदर्शन में मोक्ष के प्रत्यय के रूप में अभिव्यक्त हुई है। अभाव और अपूर्णता, जीवन की वह प्यास है, जो पूर्णता के जल से परिशान्त होना चाहती है। हमारी चेतना में जो अपूर्णता का बोध है, वह स्वयं ही हमारे में निहित पूर्णता की चाह का संकेत भी है। पाश्चात्य विचारक ब्रेडले का कथन है कि ''चेतना अनन्त है और वह अनुभव करती है कि उसकी क्षमताएं बहुत सीमित है। लेकिन सीमा या अपूर्णता को जानने के लिए असीम एवं पूर्णता का बोध भी आवश्यक है। जब हमारी चेतना यह ज्ञान रखती है कि वह शांति, सीमित एवं अपूर्ण है, तो उसका यह सीमित होने का ज्ञान स्वयं उसे इस सीमा के परे ले जाता है। इस प्रकार ब्रेडले स्व में निहित पूर्णता की चाह का संकेत करते हैं।''[अ] आत्मा पूर्ण है अर्थात् अनन्त चतुष्टय से युक्त है, यह बात जैनदर्शन के एक विद्यार्थी के लिए नयी नहीं है। वस्तुतः जैनदर्शन के अनुसार पूर्णता हमारी क्षमता है, योग्यता नहीं। पूर्णता के प्रकाश में ही हमें अपनी अपूर्णता का बोध होता है, यह अपूर्णता का बोध पूर्णता की चाह का संकेत अवश्य है, लेकिन पूर्णता की उपलब्धि नहीं। जैनदर्शन की दृष्टि से ज्ञान, भाव और संकल्प का अनन्त ज्ञान, अनन्त सौख्य और अनन्त शक्ति के रूप में विकसित हो जाना ही आत्मपूर्णता है। आत्मशक्तियों का अनावरण एवं उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति में ही आत्मपूर्णता है और यही नैतिक जीवन का साध्य है। इस प्रकार जैनदर्शन में आत्मपूर्णता का नैतिक साध्य भी मानवीय चेतना के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है।

साध्य, साधक और साधना में पारस्परिक सम्बन्ध :

जैन आचार-दर्शन में साध्य और साधक में अभेद ही माना गया है। समयसार टीका में आचार्य अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं कि ''परद्रव्य का परिहार और शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि ही सिद्धि है।''[अप] आचार्य हेमचन्द्र साध्य और साधक में अभेद बताते हुए लिखते हैं कि ''कषायों और इन्द्रियों से पराजित आत्मा ही संसार है और उनको विजित करने वाली आत्मा ही मोक्ष है।''[अपप] अध्यात्मतत्त्वालोक में मुनि न्यायविजयजी लिखते हैं कि ''आत्मा ही संसार भी है और मोक्ष भी है। जब तक आत्मा कषाय और इन्द्रियों के वशीभूत है, संसार है और उनको ही जब वह अपने वशीभूत कर लेती है तो उसे मोक्ष कहा जाता है।[अपपप] इसप्रकार हम देखते हैं कि जैनदर्शन का साध्य और साधक दोनों ही आत्मा हैं। दोनों में मौलिक अन्तर यही है कि आत्मा जब तक विषय और कषायों के वशीभूत होती है तब तक बन्धन में होती है और जब उन पर विजय प्राप्त कर लेती है, तब वही मुक्त बन जाती है अर्थात्

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

आत्मा की विषम-वासनाओं के मल से युक्त अवस्था को ही उसका बन्धन कहा जाता है और उसकी विशुद्ध अवस्था को मुक्ति कही जाती है। आसक्ति को बंधन और अनासक्ति को मुक्ति मानना, एक मनोवैज्ञानिक सत्य है।

जैन आचार-दर्शन में साध्य और साधक दोनों में अन्तर इस बात को लेकर है कि आत्मा की विभाजन अवस्था ही साधक अवस्था है और आत्मा की स्वभाव अवस्था ही सिद्धावस्था है। जैन नैतिक साधना का लक्ष्य अथवा आदर्श कोई बाह्य तत्त्व नहीं, वह तो साधक का अपना ही निज रूप है। उसकी ही अपनी पूर्णता की अवस्था है। साधक का आदर्श उसके बाहर नहीं वरन् उसके अंदर ही है। साधक को उसे पाना भी नहीं है, क्योंकि पाया तो वह जाता है, जो व्यक्ति के अपने में न हो। नैतिक साध्य बाह्य उपलब्धि नहीं आन्तरिक उपलब्धि है। दूसरे शब्दों में कहें तो वह निज गुणों का पूर्ण प्रकटन है। यहां भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि आत्मा के निज गुण या स्व-लक्षण तो सदैव ही उसमें उपस्थित हैं, साधक को केवल उन्हें प्रकटित करना है क्योंकि हमारी क्षमताएं साधक और सिद्ध अवस्था में एक जैसी हैं। साधक और सिद्ध अवस्था में अंतर क्षमताओं का ही नहीं, वरन् इन क्षमताओं को योग्यताओं में बदल देने का है। जैसे बीज वृक्ष के रूप में विकसित होता है वैसे ही मुक्तावस्था में आत्मा के निज गुण पूर्ण रूप में प्रकटित हो जाते हैं। साधक की आत्मा के ज्ञान, भाव और संकल्प के तत्त्व ही मोक्ष की अवस्था में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सौख्य और अनन्त शक्ति के रूप में प्रकट हो जाते हैं। वह आत्मा, जो कषाय एवं राग-द्वेष से युक्त है और इनसे युक्त होने के कारण बद्ध, सीमित और अपूर्ण है, वही अपने में निहित अनन्त ज्ञान, अनन्त सौख्य और अनन्त शक्ति को प्रकट कर मुक्त एवं पूर्ण बन जाती है। उपाध्याय अमर मुनिजी कहते हैं कि जैन साधना स्व में स्व को उपलब्ध करना है, निज में निज का शोध करना है, अपने में पूर्णरूपेण रमण करना है। आत्मा के बाहर एक कण में भी साधना की उन्मुखता नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन विचारणा में तात्त्विक दृष्टि से साध्य और साधक दोनों एक ही हैं, यद्यपि पर्यायार्थिक दृष्टि या व्यवहार नय से उनमें भेद माना गया है। आत्मा की स्वभाव-पर्याय या स्वभाव-दशा साध्य है और आत्मा की विभाव-पर्याय की अवस्था ही साधक है और विभाव से स्वभाव की और आना यही साधना है। जीव अपनी विभाव-पर्याय में आत्मा है, स्वभाव पर्याय में परमात्मा है और विभाव से स्वभाव की और जाने की अवस्था में महात्मा है।

साधना-पथ और साध्य :

जिसप्रकार साधक और साध्य में अभेद माना गया है, उसी प्रकार साधना-मार्ग और साध्य में भी अभेद है। जीवात्मा अपने ज्ञान, अनुभूति और संकल्प के रूप में साधक कही जाती है, उसके यही ज्ञान, अनुभूति और संकल्प सम्यक् दिशा में नियोजित होने पर साधना-पथ बन जाता है, वही जब यह अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेता है तो सिद्धि बन जाता हैं। जैनदर्शन के अनुसार सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप यह साधना-पथ है और जब जीवात्मा सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र एवं सम्यक् तप अथवा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सौख्य और अनन्त शक्ति अर्थात् अनन्त चतुष्टय की उपलब्धि कर लेता है तो यही अवस्था सिद्धि बन जाती है। आत्मा का ज्ञानात्मक पक्ष सम्यक् ज्ञान की साधना के द्वारा अनन्त ज्ञान को प्रकट कर लेता है, आत्मा का अनुभूत्यात्मक पक्ष सम्यक् दर्शन की साधना के द्वारा अनन्त दर्शन की उपलब्धि कर लेता है, आत्मा का संकल्पात्मक सम्यक् चारित्र की साधना के द्वारा अनन्त सौख्य की उपलब्धि कर लेता है और आत्मा की क्रियाशक्ति

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

सम्यक् तप की साधना के द्वारा अनन्त शक्ति को उपलब्ध कर लेती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो साधक की चेतना का स्वरूप है वही सम्यक् बनकर साधना-पथ बन जाता है और उसी की पूर्णता साध्य होती है।

मानवीय व्यवहार के प्रेरक तत्त्व :

जैनदर्शन में राग और द्वेष, ये दो कर्मबीज माने गए हैं, किन्तु इनमें से राग ही प्रमुख तथ्य है। आचारांगसूत्र में कहा गया है कि ''आसक्ति ही कर्म का प्रेरक तत्त्व है।''[पग] जैनदर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान, दोनों ही इस सन्दर्भ में एकमत हैं कि मानवीय व्यवहार का मूलभूत प्रेरक तत्त्व वासना अथवा काम है। फिर भी जैनदर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान, दोनों में ही वासना के मूलभूत प्रकार कितने हैं? इस सम्बन्ध में कोई निश्चित संख्या नहीं मिलती है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में जहां फ्रॉयड काम या राग को ही एकमात्र मूल प्रेरक तत्त्व मानते हैं, वहीं दूसरे विचारकों ने मूलभूत प्रेरक तत्त्वों की संख्या सौ तक मान ली हैं फिर भी पाश्चात्य-मनोविज्ञान में सामान्यतया १४ मूल प्रवृत्तियां मानी गयी हैं, जो इसप्रकार हैं-

१. पलायनवृत्ति, २. घृणा, ३. जिज्ञासा, ४. क्रोध, ५. मान, ६. आत्महीनता, ७. मातृत्त्व का भाव, ८. समूह-भावना, ९. संग्रहवृत्ति, १०. रचनात्मकता, ११. भोजनान्वेषण, १२. काम, १३. शरणागति और १४. हास्य।

जैनदर्शन में व्यवहार के प्रेरक तत्त्वों का वर्गीकरण : जहां तक जैन-चिन्तन का प्रश्न है, उसमें भी हमें इनकी संख्या के सम्बन्ध में एकरूपता नहीं मिलती है। जैनागमों में चेतनापरक शब्द संज्ञा-व्यवहार के प्रेरक तथ्यों के अर्थ में रूढ़ हो गया है। संज्ञा शारीरिक आवश्यकताओं एवं भावों की मानसिक चेतना है, जो परवर्ती व्यवहार की प्रेरक बनती है। किसी सीमा तक जैनदर्शन के संज्ञा शब्द को मूलप्रवृत्ति का समानार्थक माना जा सकता है। जैनागमों में संज्ञा का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है, जिनमें निम्न तीन वर्गीकरण प्रमुख हैं-

- चुतुर्विध वर्गीकरण - १. आहार, २. भय, ३. परिग्रह और ४. मैथुन।
- दशविध वर्गीकरण - १. आहार, २. भय, ३. परिग्रह, ४. मैथुन, ५. क्रोध, ६. मान, ७. माया, ८. लोभ, ९. लोक और १०. ओघ।[ग]
- षोडशविध वर्गीकरण-१. आहार, २. भय, ३. परिग्रह, ४. मैथुन, ५. सुख, ६. दुःख, ७. मोह, ८. विचिकित्सा, ९. क्रोध, १०. मान, ११. माया, १२. लोभ, १३. शोक, १४. लोक, १५. धर्म और १६. ओघ।[गप]

उपर्युक्त वर्गीकरणों में प्रथम वर्गीकरण केवल शारीरिक प्रेरकों का विवेचन प्रस्तुत करता है जबकि अन्तिम वर्गीकरण में शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक एवं सामाजिक प्रेरक तत्त्वों (संज्ञाओं) का भी समावेश हो जाता है। दूसरे एवं तीसरे वर्गीकरण में क्रोधादि कुछ कषायों को भी प्रेरक तत्त्वों के वर्गीकरण में समाविष्ट कर लिया गया है। संज्ञा और कषाय में अन्तर ठीक उसी आधार पर किया जा सकता है, जिस आधार पर पाश्चात्य मनोविज्ञान में मूलप्रवृत्ति और उसके संलग्न संवेग में किया जाता है। क्रोध की संज्ञा क्रोध कषाय से ठीक उसी प्रकार भिन्न है, जिस प्रकार आक्रामकता की मूल प्रवृत्ति से क्रोध का संवेग भिन्न है। फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर जैनदर्शन की संज्ञा एवं मनोविज्ञान की मूल प्रवृत्तियों के वर्गीकरण में बहुत कुछ समरूपता पायी जाती है।

जैनदर्शन का सुखवादी दृष्टिकोण :

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

आधुनिक मनोविज्ञान हमें यह भी बताता है कि सुख सदैव अनुकूल इसलिए होता है कि उसका जीवन-शक्ति को बनाए रखने की दृष्टि से दैहिक मूल्य है और दुःख इसलिए प्रतिकूल होता है कि वह जीवन-शक्ति का ह्रास करता है। यही सुख-दुःख का नियम समस्त प्राणीय व्यवहार का चालक है। जैन-दार्शनिक भी प्राणीय व्यवहार के चालक के रूप में इसी सुख-दुःख के नियम को स्वीकार करते हैं।[गपप] अनुकूल के प्रति आकर्षण और प्रतिकूल के प्रति विकर्षण, यह इन्द्रिय स्वभाव है। अनुकूल विषयों की ओर प्रवृत्ति और प्रतिकूल विषयों से निवृत्ति, यह एक नैसर्गिक तथ्य है। वस्तुतः वासना ही अपने विधानात्मक रूप में सुख और निषेधात्मक रूप में दुःख का रूप ले लेती है, जिससे वासना की पूर्ति हो, वही सुख और जिससे वासना की पूर्ति न हो अथवा वासना-पूर्ति में बाधा उत्पन्न हो, वह दुःख है। इसप्रकार वासना से ही सुख-दुःख के भाव उत्पन्न होकर, प्राणीय व्यवहार का नियमन करने लगते हैं। किन्तु जैनदर्शन में भौतिक सुखों से भिन्न एक आध्यात्मिक सुख भी माना गया है, जो वासना-क्षय से उपलब्ध होता है।

इन्द्रिय-दमन और जैनदर्शन :

जैनदर्शन में इन्द्रिय-संयम पर बहुत अधिक बल दिया गया है लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इन्द्रिय-निरोध सम्भव है? आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से इन्द्रिय-व्यापारों का विरोध एक अस्वाभाविक तथ्य है। आंख के समक्ष जब उसका विषय प्रस्तुत होता है तो वह उसके सौन्दर्य-दर्शन से वंचित नहीं रह सकती। भोजन करते समय स्वाद को अस्वीकार नहीं किाय जा सकता। अतः यह विचारणीय प्रश्न है कि इन्द्रिय-दमन के सम्बन्ध में क्या जैनदर्शन का दृष्टिकोण आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सहमत है? जैनदर्शन इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यही कहता है कि इन्द्रिय-व्यापारों के निरोध का अर्थ इन्द्रियों को अपने विषयों से विमुख करना नहीं, वरन् विषय-सेवन के मूल में जो निहित राग-द्वेष है, उसे समाप्त करना है।इस सम्बन्ध में जैनागम आचारांगसूत्र में जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, वह विशेष रूप से द्रष्टव्य है। उसमें कहा गया है कि इन्द्रियां अपने मूल विषय से कभी विरक्त नहीं होती है।[गपपप] जैन-दार्शनिक कहते हैं कि इन्द्रियों के मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ विषय आसक्त व्यक्ति के लिए ही राग-द्वेष का कारण बनते हैं, वीतरागी (अनासक्त) के लिए नहीं। ये विषय, रागी पुरूषों के लिए ही दुःख (बन्धन) के कारण होते हैं, वीतरागियों के बन्धन या दुःख का कारण नहीं हो सकते हैं। काम-भोग न किसी को बन्धन में डालते हैं और न किसी को मुक्त ही कर सकते हैं, किन्तु जो विषयों में राग-द्वेष करता है, वही राग-द्वेष से विकृत होता है।[गपअ]

जैनदर्शन के अनुसार साधना का सच्चा मार्ग औपशमिक नहीं वरन् क्षायिक हैं। औपशामिक मार्ग का अर्थ वासनाओं का दमन है। इच्छाओं के निरोध का मार्ग ही औपशमिक मार्ग है। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में यह दमन का मार्ग हैं, जबकि क्षायिक मार्ग वासनाओं के निरसन का मार्ग है और वह वासनाओं से ऊपर उठाता है। यह दमन नहीं अपितु चित्त-विशुद्धि है। दमन तो मानसिक गन्दगी को ढकना मात्र है और जैनदर्शन इस प्रकार के दमन को स्वीकार नही करता। जैन-दार्शनिकों ने गुण-स्थान प्रकरण में स्पष्ट रूप से यह बताया है कि वासनाओं को दबाकर आगे बढ़ने वाला साधक विकास की अग्रिम कक्षाओं से निश्चित रूप से पदच्युत हो जाता है। जैन-विचारणा के अनुसार यदि कोई साधक उपशम या दमन के आधार पर नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति करता है

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

तो वह पूर्णता के लक्ष्य के अत्यधिक निकट पहुंचकर भी पुनः पतित हो जाता है। उनकी पारिभाषिक शब्दावली में ऐसा साधक ११वें गुणस्थान तक पहुंचकर वहां से ऐसा पतित होता है कि पुनः निम्नतम प्रथम मिथ्यात्त्व नामक गुणस्थान में आ जाता है। इसप्रकार हम देखते हैं कि जैनदर्शन भी आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के समान ही दमन को साधना का सच्चा मार्ग नहीं मानता है। उसके अनुसार साधना का सच्चा मार्ग वासनाओं का दमन नहीं अपितु उनके ऊपर उठ जाना है। वह इन्द्रिय-निग्रह नहीं अपितु इन्द्रिय अनुभूतियों में भी मन की वीतरागता या समत्त्व की अवस्था है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनदर्शन अपनी विवेचनाओं तात्त्विक चिन्तन के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक आधारों को भी स्वीकार करता है। उसके सभी सिद्धान्त उसकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि के परिचायक है।

सन्दर्भ–सूची :

1. आयाए समाइए आया सामाइस्स अट्ठे। – भगवतीसूत्र
2. जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि, पृ. 259
3.फर्स्ट प्रिन्सिपल्स–स्पेन्सर, पृ. 66
iv. Five Types of Ethical Theories, p. 16
v. Ethical Studies, Chapter II
अप. समयसार टीका, गाथा 305
अपप. योगशास्त्र, 4/5
अपपप. अध्यात्म तत्त्वालोक, 4/6
पग. आचारांगसूत्र, 1/3/2
ग. समवायांग, 4–5, प्रज्ञापना पद 8
गप. अभिधान राजेन्द्र को ा, खण्ड 7, पृ. 301
गपप. आचारांगसूत्र 1/2/3/81
गपपप.आचारांगसूत्र, 2/3/15/101–105
गपअ. उत्तराध्ययनसूत्र, 32/100–101